॥ ओ३म् ॥

आर्य सत्संग गुटका

सन्ध्या, प्रार्थना, स्वस्तिवाचन, शान्ति-प्रकरण,
प्रधान-हवन, सङ्गठनसूक्त, आर्य समाज के
नियम एवं मनोहर भजन

[सार्वदेशिक धर्मार्यसभा से स्वीकृत पद्धति के आधार पर]

गोविन्दराम हासानन्द

आर्य साहित्य भवन

संवत् २०३३] ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६ [मूल्य ८० पैसे

प्रार्थना

हे सर्वाधार, सर्वान्तर्यामिन् परमेश्वर ! तुम अनन्त काल से अपने उपकारों की वर्षा किये जाते हो । प्राणिमात्र की सम्पूर्ण कामनाओं को तुम्हीं प्रतिक्षण पूर्ण करते हो । हमारे लिए जो कुछ शुभ है तथा हितकर है उसे तुम बिना मांगे स्वयं हमारी झोली में डालते जाते हो, तुम्हारे आंचल में अविचल शान्ति तथा आनन्द का वास है । तुम्हारी चरण-शरण की शीतल छाया में परम तृप्ति है, शाश्वत सुख की उपलब्धि है तथा सब अभिलषित पदार्थों की प्राप्ति है ।

हे जगतपिता परमेश्वर ! हम में सच्ची श्रद्धा तथा विश्वास हो । हम तुम्हारी अमृतमयी गोद में बैठने के अधिकारी बनें । अन्तःकरण को मलिन बनाने वाली स्वार्थ तथा संकीर्णता की सब क्षुद्र भावनाओं से हम ऊंचे उठें । काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि कुटिल भावनाओं तथा सब मलिन वासनाओं को हम दूर करें । अपने हृदय की आसुरी प्रवृत्तियों के साथ युद्ध में विजय पाने के लिए हे प्रभो ! हम तुम्हें पुकारते हैं और तुम्हारा आंचल पकड़ते हैं ।

हे परम पावन प्रभो ! हम में सात्त्विक प्रवृत्तियां जागरित हों । क्षमा, सरलता, स्थिरता, निर्भयता, अहङ्कारशून्यता इत्यादि शुभ भावनाएँ हमारी सम्पत्ति हों । हमारा शरीर स्वस्थ तथा परिपुष्ट हो, मन सूक्ष्म तथा उन्नत हो, आत्मा पवित्र तथा सुन्दर हो, तुम्हारे संस्पर्श से हमारी सारी शक्तियाँ विकसित हों । हृदय दया तथा सहानुभूति से भरा हो । हमारी वाणी में मिठास हो तथा दृष्टि में प्यार हो । विद्या और ज्ञान से हम परिपूर्ण हों । हमारा व्यक्तित्व महान् तथा विशाल हो ।

हे प्रभो ! अपने आशीर्वादों की वर्षा करो । दीनातिदीनों के मध्य में विचरने वाले तुम्हारे चरणारविन्दों में हमारा जीवन अर्पित हो, इसे अपनी सेवा में लेकर हमें कृतार्थ करें ।

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

।। ओ३म् ।।

वैदिक सन्ध्या

पहले जलादि से बाह्य शुद्धि फिर राग-द्वेषादि के त्याग से भीतर की शुद्धि करनी चाहिए। तत्पश्चात् कुशा या हाथ से मार्जन करें। फिर कम से कम तीन प्राणायाम करें। पश्चात् पृष्ठ ६ पर लिखे "गायत्री मन्त्र" से शिखा को बाँध कर रक्षा करें।

।। अथाचमनमन्त्रः ।।

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ।। यजु० ३६ । १२ ।।

सर्वव्यापक, सबका प्रकाशक और सब को आनन्द देने वाला परमेश्वर मनोवाञ्छित सुख और पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए हमारा कल्याण करे तथा हम पर सुख की सर्वदा वृष्टि करे।

।। अथेन्द्रियस्पर्शमन्त्रः ।।

पात्र में से बायें हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से स्पर्श करके प्रथम दक्षिण और पश्चात् वामपार्श्व में निम्न मन्त्र से स्पर्श करे।

ओं वाक् वाक् । ओं प्राणः प्राणः ।
ओं चक्षुश्चक्षुः । ओं श्रोत्रं श्रोत्रम् ।
ओं नाभिः । ओं हृदयम् । ओं कण्ठः ।

ओं शिरः । ओं बाहुभ्यां यशोबलम् ।
ओं करतलकरपृष्ठे ।

इन मन्त्रों से ईश्वर की प्रार्थनापूर्वक क्रमशः मुख, नासिका, नेत्र, श्रोत्र (कान), नाभि, हृदय, कण्ठ, सिर तथा भुजाओं के मूल स्कन्ध, और दोनों हाथों के ऊपर-तले स्पर्श करे। इसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर की कृपा से हमारी ये सब ज्ञान और कर्मेन्द्रिय यश और बल से युक्त हों।

॥ अथेश्वरप्रार्थनापूर्वकमार्जनमन्त्रः ॥

अब बायें हाथ में जल लेकर मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अंगों पर जल छिड़कें। इससे आलस्य दूर होता है। जो आलस्य न हो और जल प्राप्त न हो तो न छिड़कें।

ओं भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओं स्वः पुनातु कण्ठे । ओं महः पुनातु हृदये । ओं जनः पुनातु नाभ्याम् । ओं तपः पुनातु पादयोः । ओं सत्यं पुनातु पुन शिरसि ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ।

प्राणों से भी प्रिय परमात्मा सिर को पवित्र करे। दुःख विनाशक परमात्मा आँखों को पवित्र करे। सदा आनन्दमय और सब को आनन्द देने वाला परमात्मा कंठ में पवित्रता करे। सबसे महान् और सबका पूज्य परमात्मा हृदय को पवित्र करे। सर्वजगदुत्पादक परमात्मा नाभि को पवित्र करे। दुष्टों को सन्ताप देने वाला परमात्मा

पैरों को पवित्र करे, सत्यस्वरूप अविनाशी परमात्मा पुनः सिर में पवित्रता करे। सर्वव्यापक सर्वतोमहान् परमात्मा शरीर के सब अङ्गों में पवित्रता करे।

॥ अथ प्राणायाममन्त्राः ॥

पुनः शास्त्रोक्त रीति से प्राणायाम[1] की क्रिया करता जावे और नीचे लिखे मन्त्रों का जप भी करता जावे। इस रीति से कम-से-कम तीन और अधिक-से-अधिक २१ प्राणायाम करे।

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः।
ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम् ॥

तैत्ति० १० । २७ ॥

परमपिता परमात्मन्! आप प्राणों से प्रिय, दुःख-विनाशक और सुखप्रदाता, आनन्दमय और आनन्ददाता, सर्वतोमहान् सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता, दुष्टों को दण्ड देने वाले, सदा एकरस, अखण्ड, अविनाशी और अपरिवर्तनशील हो।

इस प्रकार ईश्वर के गुणों का स्मरण करते हुए उसमें अपने आप को मग्न करके अत्यन्त आनन्दित होना चाहिये।

॥ अथाघमर्षणमन्त्राः ॥

तत्पश्चात् सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर और सृष्टिक्रम का विचार नीचे लिखे मन्त्रों से करे और जगदीश्वर को सर्वव्यापक, न्यायकारी, सर्वत्र सर्वदा सब जीवों के कर्मों के द्रष्टा को निश्चित मानके पाप की ओर अपने आत्मा और मन को कभी न जाने देवे किन्तु धर्मयुक्त कर्मों में वर्तमान रखे। (संस्कार विधि)

---

१. प्राणायाम के लिए सत्यार्थ प्रकाश का तृतीय समुल्लास देखिये।

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥
सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

सर्वत्र प्रकाशमान ईश्वर के अनन्त सामर्थ्य से वेद विद्या और त्रिगुणात्मक प्रकृति उत्पन्न हुई। उसी परमात्मा के सामर्थ्य से प्रलय उत्पन्न हुआ और उसी परमात्मा से महासमुद्र उत्पन्न हुए।

सारे ब्राह्मण्ड को सहज ही में अपने वश में रखने वाले परमेश्वर ने समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर=वर्ष और फिर इनके विभाग, दिन, रात, क्षण, मुहूर्त्त आदि को रचा।

सब जगत् को धारण और पोषण करने वाले परमात्मा ने जैसे पूर्व कल्प में सूर्य और चन्द्र रचे वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं। ठीक उसी प्रकार द्युलोक, पृथिवीलोक, अन्तरिक्ष और आकाश में जितने लोक हैं उनका निर्माण भी पूर्वकल्प के अनुसार ही किया है।

॥ अथाचमनमन्त्रः ॥

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥

इस मन्त्र से पुनः तीन आचमन करें। तदनन्तर गायत्र्यादि मंत्रों के अर्थ विचारपूर्वक परमेश्वर की स्तुति अर्थात् परमेश्वर के गुण, उपकार का ध्यान कर पश्चात् प्रार्थना करें।

॥ अथ मनसापरिक्रमामन्त्राः ॥

निम्न मन्त्रों को पढ़ते जाना और अपने मन से चारों ओर बाहर-भीतर परमात्मा को पूर्ण जानकर निर्भय, निश्शङ्क, उत्साही, आनन्दित तथा पुरुषार्थी रहना।

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमो० ॥२॥ शेष पूर्ववत्

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षिता-न्नमिषवः। तेभ्यो नमो० ॥३॥ शेष पूर्ववत्

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता-शनिरिषवः। तेभ्यो नमो० ॥४॥ शेष पूर्ववत्

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो नमो० ॥५॥ शेष पूर्ववत्

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो नमो० ॥६॥ शेष पूर्ववत्

पूर्वदिशा या सामने की ओर ज्ञानस्वरूप परमात्मा सब जगत् का स्वामी है। वह बन्धन-रहित भगवान् सब ओर से रक्षा करता है। सूर्य की किरणें उसके बाण अर्थात् रक्षा के साधन हैं। उन सब के गुणों के अधिपति ईश्वर के गुणों को हम लोग बारम्बार नमस्कार करते हैं। जो ईश्वर के गुण और ईश्वर के रचे पदार्थ जगत् की रक्षा करने वाले हैं और पापियों को बाणों के समान पीड़ा देने वाले हैं उनको हमारा नमस्कार हो। जो अज्ञान से हमारा द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं उन सबकी बुराई को उन बाण-रूपी मुख के बीच में दग्ध कर देते हैं ॥१॥

दक्षिण दिशा में सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त परमात्मा सब जगत् का स्वामी है। कीट-पतंग वृश्चिक आदि से वह परमेश्वर रक्षा करने वाला है। ज्ञानी लोग उसकी सृष्टि में बाण के सदृश हैं। उन सब के ......इत्यादि पूर्ववत् ॥२॥

पश्चिम दिशा में वरुण सबसे उत्तम परमेश्वर सबका राजा है। वह बड़े-बड़े अजगर सर्पादि विषधर प्राणियों से रक्षा करने वाला है। पृथिव्यादि पदार्थ उसके बाण के सदृश हैं अर्थात् श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों की ताड़ना के निमित्त हैं। उन सब के......इत्यादि पूर्ववत् ॥३॥

उत्तर दिशा में सोम-शान्त्यादि गुणों से आनन्द प्रदान करने वाला जगदीश्वर सब जगत् का राजा है। वह अजन्मा और अच्छी प्रकार रक्षा करने वाला है। विद्युत् उसके बाण हैं। उन सब के··· ···इत्यादि पूर्ववत् ॥४॥

नीचे की दिशा में विष्णु-सर्वत्र-व्यापक परमात्मा सब जगत् का राजा है। चित्रग्रीवा[1] वाला परमेश्वर सब प्रकार से रक्षा करता है। नाना प्रकार की वनस्पतियाँ उसके बाण सदृश हैं। उन सब के इत्यादि पूर्ववत् ॥५॥

ऊपर की दिशा में बृहस्पति, वाणी, वेदशास्त्र और आकाश आदि बड़ी-बड़ी शक्तियों का स्वामी सब का अधिष्ठाता है। अपने शुद्ध ज्ञानमय स्वरूप से हमारा रक्षक है। वृष्टि उसके बाण-रूप अर्थात् रक्षा का साधन है। उन सब के······इत्यादि पूर्ववत् ॥६॥

॥ अथोपस्थानमन्त्राः ॥

अब परमात्मा का उपस्थान अर्थात् परमेश्वर के निकट मैं और मेरे निकट परमात्मा है ऐसी बुद्धि करके—

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१॥

य० ३५ । १४ ॥

---

१. ईश्वर निराकार है। अथर्ववेद के अनुसार आलंकारिक भाषा में यह विराट् ब्रह्माण्ड उसका शरीर है, द्युलोक उसका मस्तक, भूमि उसके पैर और अन्तरिक्ष उसका धड़ है। भूमि पर उगने वाले और अन्तरिक्ष में फैले नाना प्रकार के हरे वृक्ष मानो उसकी ग्रीवा हैं। (सम्पादक)

हे परमेश्वर ! आप अन्धकार से पृथक् प्रकाशस्वरूप हैं। आप प्रलय के पश्चात् भी सदा विद्यमान रहते हैं। आप प्रकाशकों के प्रकाशक, चराचर के आत्मा और ज्ञानस्वरूप हैं। आपको सर्वश्रेष्ठ जानकर श्रद्धापूर्वक हम आपकी शरण में आये हैं। नाथ ! अब हमारी रक्षा कीजिये।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥२॥
यजु० ३३।३१॥

वेद की श्रुति और जगत् के नाना पदार्थ, झण्डों के समान उस दिव्यगुणयुक्त, सर्वप्रकाशक, चराचर के आत्मा, वेदप्रकाशक भगवान् को विश्वविद्या की प्राप्ति के लिए उत्तम रीति से जनाते और प्राप्त कराते हैं।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३॥

यजु० ७।४२॥

जो सब देवों में श्रेष्ठ और बलवान् है, जो सूर्यलोक, प्राण, अपान और अग्नि का भी प्रकाशक है। जो द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवीलोक में व्यापक है जो जड़ और चेतन जगत् का आत्मा= जीवन है, वह चराचर जगत् का प्रकाशक परमात्मा हमारे हृदयों में सदा प्रकाशित रहे।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः

शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥४॥ यजु० ३६ । २४ ॥

उस सबके द्रष्टा, धार्मिक विद्वानों के परमहितकारक, सृष्टि से पूर्व, पश्चात् और मध्य में सत्यस्वरूप से विद्यमान रहने वाले और सर्व जगदुत्पादक ब्रह्म को सौ वर्ष तक देखें। उसके सहारे से सौ वर्ष तक जीयें। सौ वर्ष तक उसका ही गुण-गान सुनें। उसी ब्रह्म का सौ वर्ष तक उपदेश करें। उसी की कृपा से सौ वर्ष तक किसी के अधीन न रहें। उसी ईश्वर की आज्ञापालन और कृपा से सौ वर्ष के उपरान्त भी हम लोग देखें, जीवें, सुनें, सुनावें और स्वतन्त्र रहें।

॥ अथ गायत्री मन्त्रः ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

य० ३६ । ३ ॥

सच्चिदानन्द, सकल जगदुत्पादक, प्रकाशकों के प्रकाशक, परमात्मा के सर्वश्रेष्ठ, पापनाशक तेज का हम ध्यान करते हैं। वह परमेश्वर हमारी बुद्धि और कर्मों को उत्तम प्रेरणा करे।

॥ अथ समर्पणम् ॥

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः ॥

॥ नमस्कार-मन्त्रः ॥

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

य० १६ । ४१ ॥

जो सुखस्वरूप और संसार के उत्तम सुखों को देने वाला, कल्याण का कर्ता, मोक्षरूप और धर्म के कामों को ही करने वाला, अपने भक्तों को धर्म के कामों से युक्त करने वाला अत्यन्त मङ्गलरूप और धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष देने हारा है उस को हमारा बारम्बार नमस्कार हो ।

॥ इति सन्ध्योपासनविधिः ॥

—:❀:—

भजन

ओं है जीवन हमारा, ओं प्राणाधार है ।
ओं है कर्त्ता विधाता, ओं पालनहार है ॥
ओं है दुःख का विनाशक, ओं सर्वानन्द है ।
ओं है बल तेज धारी, ओं करुणानन्द है ॥
ओं सबका पूज्य है, हम ओं का पूजन करें ।
ओं ही के ध्यान से, हम शुद्ध अपना मन करें ॥
ओं के गुरु मन्त्र जपने से, रहेगा शुद्ध मन ।
बुद्धि दिन प्रतिदिन बढ़ेगी, धर्म में होगी लगन ॥
ओं के जप से हमारा ज्ञान बढ़ता जायेगा ।
अन्त में यह ओं हमको मुक्ति तक पहुँचायेगा ॥

॥ अथ ऋत्विग्वरणम् ॥

यजमानोक्तिः—ओमावसोः सदने सीद ।

ऋत्विगुक्तिः—ओं सीदामि ।

यजमानोक्तिः—

ओं तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणेऽमुक संवत्सरे...अयने...ऋतौ...मासे...पक्षे...तिथौ...दिवसे...नक्षत्रे...लग्ने...मुहूर्त्ते...अत्र...अहम्...कर्मकरणाय भवन्तं वृणे ।

ऋत्विगुक्तिः—वृतोऽस्मि ।

॥ आचमनमन्त्राः ॥

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥ इससे एक

ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥ इससे दूसरा

ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥

तैत्तिरीय आरण्यक प्र० १० । अनु० ३२, ३५ ॥

इससे तीसरा आचमन करके तत्पश्चात् जल लेकर नीचे लिखे मन्त्रों से अंगों को स्पर्श करें ।

॥ अंगस्पर्शमन्त्राः ॥

ओं वाङ् म आस्येऽस्तु ॥ इस मन्त्र से मुख
ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र
ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों आँखें
ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों कान
ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों बाहु
ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों जंघा और
ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥

पारस्कर गृ० का० १। कण्डिका ३। सू० २५ ॥

इस मन्त्र से दाहिने हाथ से जल स्पर्श करके मार्जन करना।

—❖—

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामंत्राः

सब संस्कारों के आदि में निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ और अर्थ द्वारा एक विद्वान् वा बुद्धिमान् पुरुष ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगा के करे, और सब लोग उसमें ध्यान लगाकर सुनें और विचारें—

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रन्तन्न आ सुव ॥१॥ यजु० अ० ३०। मंत्र ३ ॥

अर्थ—हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्य-युक्त (देव) शुद्धस्वरूप, सब सुखोंके दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परा, सुव) दूर कर दीजिये । (यत्) जो (भद्रम्) कल्याण-कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है । (तत्) वह सब हमको (आ सुव) प्राप्त कीजिये ॥१॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥ यजु० १३ । ४ ॥

अर्थ—जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतनस्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्त्तत) वर्तमान था, (सः) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्यादि का (दाधार) धारण कर रहा है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिए (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगा-भ्यास और अति प्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें ॥२॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥ यजु० २५ । १३ ॥

अर्थ—(यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता, (बलदाः) शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने हारा, (यस्य) जिसकी

(विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिसका (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्षसुखदायक है (यस्य) जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ॥३॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥ यजु० २५। ११॥

अर्थ—(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपनी अनन्त महिमा से (एक इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ऐश्वर्य को देनेहारे परमात्मा के लिये (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा पालन में समर्पित करके (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥ यजु० ३२। ६॥

अर्थः—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि को (दृढा) धारण किया

(येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण किया और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोक-लोकान्तरों को (विमानः) विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥ ऋ० १०।१२१।१०॥

अर्थ—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा! (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़-चेतनादिकों को (न) नहीं (परि बभूव) तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। (यत्कामाः) जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले होके हम लोग भक्ति करें, (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें (तत्) उस-उस की कामना (नः) हमारी (अस्तु) सिद्ध होवे, जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥६॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥ यजु० ३२।१०॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों का (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक, (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक, (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करने हारा, (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम स्थान जन्मों को (वेद) जानता है और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख-दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है। अपने लोग मिल के सदा उसकी भक्ति किया करें ।।७।।

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।।८।। यजु० ४० । १६ ।।

अर्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करनेहारे (देव) सकलसुखदाता परमेश्वर ! आप जिस से (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये और (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये। इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नम उक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ।। ८ ।।

अथ स्वस्तिवाचनम्

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥
स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २ ॥

ऋ० मं० १ । सू० १ । मं० २, ६ ॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः । स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥ ३ ॥

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः । बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥ ४ ॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये । देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ ५ ॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।

स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ ६ ॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥ ७ ॥

ऋ० मं० ५ । सू० ५१ । मं० ११-१५ ॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः । ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० १५ ॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः । उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥ ९ ॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः । ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥ १० ॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता

दधिरे दिवि क्षयम् । ताँ आ विवास नमसा सुवृ-
क्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥ ११ ॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे
देवासो मनुषो यतिष्ठन । को वोऽध्वरं तुविजाता
अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥ १२ ॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्नि-
र्मनसा सप्तहोतृभिः । त आदित्या अभयं शर्म
यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥ १३ ॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य
स्थातुर्जगतश्च मन्तवः । ते नः कृतादकृतादेन-
सस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥ १४ ॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं
जनम् । अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावा-
पृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥ १५ ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं
सुप्रणीतिम् । दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्र-
वन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ १६ ॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिहुतः। सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ १७ ॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः। आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥ १८ ॥

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि। यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥ १९ ॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने। प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥ २० ॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति। स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥ २१ ॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति। सा नो अमा सो अरणे नि पातु

स्त्वावेशा भवतु देवगोपा ॥ २२ ॥

ऋ० मं० १० । सू० ६३ । मं० ३-१६ ॥

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता
प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय
भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा व स्तेनऽईशत
माघशꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात
बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ २३ ॥

यजु० अ० १ । मं० १ ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धा-
सोऽअपरीतास उद्भिदः । देवा नो यथासदमिद्वृधेऽ
असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ २४ ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाꣳ
रातिरभि नो नि वर्तताम् । देवानाꣳ सख्यमुप
सेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ २५ ॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्व-
मवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथावेदसामसद्वृधे
रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २६ ॥

स्वस्ति न ऽ इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ २७ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २८ ॥

यजु० अ० २५ । मं० १४, १५, १८, १९, २१ ॥

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ २९ ॥

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ ३० ॥

साम० पूर्वा० प्रपा० १ । मं० १, २ ॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ ३१ ॥ अथर्व० काण्ड १ । सूक्त १ । मं० १ ॥

॥ इति स्वस्तिवाचनम् ॥

अथ शान्तिकरणम्

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः । शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥

शं नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः । शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् । शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥ ४ ॥

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु । शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभि-
र्वरुणः सुशंसः। शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं
नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो
ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः। शं नः स्वरूणां मितयो
भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः
प्रदिशो भवन्तु। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु
शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु
मरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो
अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तू-
षसो विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः
शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥ १० ॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती

सहधीभिरस्तु । शमभिषाचः शमुरातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ ११ ॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः । शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १२ ॥

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः । शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ १३ ॥

ऋ० ७ । ३५ । १-१३

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १४ ॥

शं नो वातः पवताᳬ शं नस्तपतु सूर्यः । शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥ १५ ॥

अहानि शं भवन्तु नः शᳬ रात्रीः प्रतिधीयताम् । शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥ १६ ॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ १७ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १८ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १९ ॥

॥ यजु० ३६ । ८, १०, ११, १२, १७, २४ ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २० ॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे

मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २१ ॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २२ ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २३ ॥

यस्मिन्नृचः सामयजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २४ ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २५ ॥ यजु० ३४ । १-६ ॥

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ २६ ॥ साम० उत्त० १ । १ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी

उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधराद-भयं नो अस्तु ॥ २७ ॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ २८ ॥ अथर्व० १९ । १५ । ५, ६ ॥

॥ इति शान्तिकरणम् ॥

—:०:—

अग्न्याधान मन्त्रः

ओं भूर्भुवः स्वः ॥

॥ गोभिल० गृ० प्र० १ । खं० १ । सू० ११ ॥

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला, उससे कपूर में लगा, किसी एक पात्र में धर कर उस में छोटी-छोटी लकड़ी लगा के यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से आधान करे। वह मन्त्र यह है—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्नि-मन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ यजु० ३ । ५ ॥

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर कर उस पर छोटे-छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर, अगला मन्त्र पढ़ के व्यजन से अग्नि प्रदीप्त करे।

अग्नि प्रदीप्त करने का मन्त्रः

ओम् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते स ँ सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥

॥ यजु० १५। ५४॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा पलाशादि की तीन लकड़ी आठ-आठ अंगुल की, घृत में डुबा उनमें से एक-एक निकाल नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा अग्नि में चढ़ावें। वे मन्त्र ये हैं—

समिदाधान के मन्त्रः

ओम् अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे। इदं न मम॥ १॥ इससे पहली

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा। इदमग्नये। इदन्न मम॥ २॥ इससे और—

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन।
अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे।
इदन्न मम ॥ ३ ॥ इससे दूसरी समिधा

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे।
इदं न मम ॥ ४ ॥ यजु० अ० ३। मं० १, २, ३ ॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें।

इन मन्त्रों से समिदाधान करके नीचे लिखे मन्त्र से पांच घृत की आहुति देनी।

घृताहुति मन्त्रः

ओं अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे। इदं न मम ॥ १ ॥

तत्पश्चात् अञ्जलि में जल लेके वेदी के पूर्व दिशा आदि चारों ओर छिड़कावे, इसके ये मन्त्र हैं :—

जल प्रसेचन के मन्त्रः

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व ॥ इस मन्त्र से पूर्व में

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥ इससे पश्चिम में

ओम् सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ इससे उत्तर में और—

॥ गोभिल गृ० प्र० १ । खं० ३ । सू० १-३ ॥

ओं देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥[1] यजु० अ० ३० । मं० १ ॥

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावें ।

इसके पश्चात् मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती हैं उनमें से यज्ञ कुण्ड के उत्तर भाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्ड के दक्षिण भाग में दूसरी आहुति देनी होती है, उन का नाम "आघारावाज्याहुति" कहते हैं। और जो कुण्ड के मध्य में आहुतियां दी जाती हैं उनका नाम "आज्यभागाहुति" कहते हैं। सो घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा मध्यमा अनामिका से स्रुवा को पकड़ के—

आघारावाज्याहुतिमन्त्र

ओं अग्नये स्वाहा । इदमग्नये । इदं न मम ॥

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग अग्नि में,

---

१. जल छिड़कने की विधि ऐसी है—पूर्व में से उत्तर दक्षिण की ओर, पश्चिम में—दक्षिण से उत्तर की ओर, उत्तर में—पश्चिम से पूर्व की ओर तथा 'देवसवितः' मन्त्र से पूर्व से आरम्भ करके वेदी के चारों ओर जल छिड़कना चाहिए । —सम्पादक

ओं सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय । इदं न मम ॥

॥ गो० गु० प्र० १ । खं० ८ । सू० १-३ ॥

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी, तत्पश्चात्

आज्यभागाहुतिमन्त्रः

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये । इदं न मम ॥

ओं इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय । इदं न मम ॥

इन दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी ।

प्रातःकाल प्रधान होम 'मुख्य होम'

आघारावाज्यभागाहुति चार देके नीचे लिखे हुए मन्त्रों से प्रातःकाल अग्निहोत्र करें ।

॥ प्रातःकाल आहुति के मन्त्रः ॥

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥१॥

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥३॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥४॥

अब निम्नलिखित मन्त्रों से प्रातः सायं आहुति देनी चाहिए ।

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । इदमग्नये प्राणाय । इदं न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा । इदं वायवेऽपानाय । इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा । इदमादित्याय व्यानाय । इदं न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा । इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः । इदं न मम ॥४॥

ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥६॥

यजु० अ० ३२ । मं० १४ ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद् भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥७॥

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि

देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥८॥

यजु० अ० ४० । मं० १६ ॥

आहिताग्नि होम

अब नीचे लिखे मन्त्र सायंकाल में अग्निहोत्र के जानो—

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१॥

ओम् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥३॥

इस तीसरे मंत्र को मन से उच्चारण करके तीसरी आहुति देनी।

ओम् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥४॥

यजु० अ० ३ । मं० ९-१० ॥

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥१॥

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ॥२॥

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥४॥

ओम् आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥

ओम् सर्वं वै पूर्णं ँ स्वाहा

इससे तीन पूर्णाहुति देवें।

सायंकाल के होम की पूर्ण विधि[1]

आचमन से लेकर आघारावाज्यभागाहुति देकर नीचे लिखे प्रकार अग्निहोत्र करें।

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१॥

ओम् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥३॥

अब तीसरे मन्त्र को मन से उच्चारण करके तीसरी आहुति देनी चाहिये—

ओम् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥४॥

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदमग्नये प्राणाय इदं न मम ॥१॥

---

१. यदि सायंकाल पृथक् यज्ञ करना हो तो निम्न मन्त्रों में आहुति दीजिये।

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ॥ इदं वायवेऽपानाय । इदं न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥ इदमादित्याय व्यानाय । इदं न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः । इदं न मम ॥४॥

ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥६॥

यजु० अ० ३० । मं० १४ ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद् भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥७॥[1]

यजु० अ० ३० । मं० ३ ॥

---

१. सामग्री की आहुति केवल प्रातः और सायंकालीन मन्त्रों से देनी है । शेष सब घृत आहुतियाँ हैं । हाँ, यदि गायत्री अथवा 'विश्वानि देव' मन्त्र से अधिक आहुतियाँ देनी हों तो घृत के साथ सामग्री की आहुतियाँ भी दी जानी चाहियें ।

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेम स्वाहा ।।८।।

यजु० अ० ४० । म० १६ ।।

पूर्णाहुति प्रकरण

आघारावाज्याहुतिमन्त्र

ओं अग्नये स्वाहा ।। इदमग्नये । इदं न मम ।

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग अग्नि में,

ओं सोमाय स्वाहा ।। इदं सोमाय। इदं न मम ।

।। गो० गृ० अ० १ । ख० ८ । सू० २४ ।।

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देवें । तत्पश्चात्

आज्याभागाहुतिमन्त्र

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये। इदं न मम ।।

ओं इन्द्राय स्वाहा ।। इदमिन्द्राय । इदं न मम ।।

इन दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में आहुति देनी, उसके पश्चात् उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भर के प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें ।

व्याहृत्याहुतिमन्त्राः

ओं भूरग्नये स्वाहा ।। इदमग्नये। इद न मम ।।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे । इदं न मम ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा । इदमादित्याय । इदं न मम ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः । इदं न मम ॥

ये चार घी की आहुति देकर स्विष्टकृत् होमाहुति एक ही दें, यह घृत अथवा भात की देनी चाहिए ; उसका मन्त्र—

स्विष्टकृदाहुतिमन्त्रः

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते । इदं न मम ॥ शतपथ० का० १४ । ६ । ४ । २४ ॥

इससे एक आहुति करके प्राजापत्याहुति नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोल के देनी चाहिए ।

प्राजापत्याहुतिमन्त्रः

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये । इदं न मम ॥

इससे मौन करके एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवें।

आज्याहुतिमन्त्राः

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय । इदन्न मम ॥१॥

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय । इदन्न मम ॥२॥

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय । इदन्न मम ॥३॥

ऋ० मं० ९ । सू० ६६ । मं० १९, २०, २१ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुम-

स्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा।
इदं प्रजापतये। इदन्न मम ॥४॥

ऋ० मं० १०। सू० १२१। मं० १०॥

इनसे घृत की चार आहुति करके "अष्टाज्याहुति" के निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वथा मंगल कार्यों में ८ (आठ) आहुति देवें। वे आठ आहुतिमन्त्र ये हैं—

अष्टाज्याहुतिमन्त्राः

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा॥ इदमग्निवरुणाभ्याम्। इदन्न मम ॥१॥

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा॥ इदमग्निवरुणाभ्याम्। इदन्न मम ॥२॥

ऋ० मं० ४। सू० १। मं० ४, ५॥

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके स्वाहा॥ इदं वरुणाय। इदन्न मम ॥३॥ ऋ० मं० १। सू० २५। मं० १९॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा॥ इदं वरुणाय। इदन्न मम॥४॥ ऋ० मं० १। सू० २४। मं० ११॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्क्काः स्वाहा॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्क्केभ्यः। इदन्न मम॥५॥

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजँ् स्वाहा॥ इदमग्नये अयसे। इदन्न मम॥६॥ कात्या० २५-१। ११॥

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणायाऽऽदित्या-

याऽदितये च्च इदन्न मम ॥

ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० १५ ॥

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञँ हिँ सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥ इदं जातवेदोभ्याम् इदन्न मम ॥

यजु० अ० ५ । मं० ३ ॥

पुनः निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति करे । स्रुवा को घृत से भरके-

ओं सर्वं वै पूर्णं ᳪ स्वाहा

इस मंत्र से एक आहुति देवे ऐसे ही दूसरी और तीसरी आहुति देवे ।

—❁—

पूर्णमासी की आहुतियाँ

ओं अग्नये स्वाहा ॥१॥ ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥२॥ ओं विष्णवे स्वाहा ॥३॥

अमावास्या की आहुतियां

ओं अग्नये स्वाहा ॥१॥ ओं इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा ॥२॥ ओं विष्णवे स्वाहा ॥३॥

(३) अथ पितृयज्ञः

अग्निहोत्र के पश्चात् पितृयज्ञ है। पितृयज्ञ अर्थात् जीते माता, पिता, आचार्य, गुरु, उपाध्याय आदि मान्यों की यथावत् सेवा करना पितृयज्ञ कहलाता है। इति पितृयज्ञः ॥

(४) अथ भूतयज्ञः (बलिवैश्वदेव)

निम्नलिखित दस मन्त्रों से घृत मिश्रित भात की, यदि भात न बना हो तो क्षार और लवणान्न को छोड़कर पाकशाला में जो कुछ भोजन बना हो, उसी की आहुति करें—

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ ओं सोमाय स्वाहा ॥ ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ओं धन्वन्तरये स्वाहा ॥ ओं कुह्वै स्वाहा ॥ ओमनुमत्यै स्वाहा ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ ओं द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥ ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥

तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से बलिदान करे। एक पत्तल व थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग रखना। यदि भाग रखने के समय कोई अतिथि आ जाय तो उसी को देना, अथवा अग्नि में डालना चाहिए—

भाग रखने के मन्त्र

ओं सानुगायेन्द्राय नमः ॥ (इससे पूर्व) ॥

ओं सानुगाय यमाय नमः ॥ (इससे दक्षिण) ॥

ओं सानुगाय वरुणाय नमः ॥ (इससे पश्चिम) ॥
ओं सानुगाय सोमाय नमः ॥ (इससे उत्तर) ॥
ओं मरुद्भ्यो नमः ॥ (इससे द्वार) ॥
ओं अद्भ्यो नमः ॥ (इससे जल) ॥
ओं वनस्पतिभ्यो नमः ॥ (इससे मूसलोखल) ॥
ओं श्रियै नमः ॥ (इससे ईशान) ॥
ओं भद्रकाल्यै नमः ॥ (इससे नैर्ऋत्य) ॥
ओं ब्रह्मणे नमः ॥ ओं वास्तुपतये नमः ॥ (इससे मध्य) । ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ॥ ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥ ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥ (इससे ऊपर) । ओं सर्वात्मभूतये नमः ॥ (इससे पृष्ठ) । ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥ (इससे दक्षिण) ॥

॥ मनु० ३ । ८७-९१ ॥

तत्पश्चात् घृत सहित लवणान्न लेके

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि ॥

॥ मनु० अ० ३ । श्लोक ९२ ॥

अर्थ—कुत्ते, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कृमि इन छः नामों से छः भाग पृथिवी में धरे। और छः भाग जिस-जिस नाम के हों उस-उस को देवे ॥ इति बलिवैश्वदेवविधिः ॥

(५) अतिथियज्ञः

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिगृ हाना-गच्छेत् ॥१॥

स्वयमेनमभ्युपेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वऽवात्सी-र्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथा-स्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निका-मस्तथास्त्विति ॥२॥ अथर्व० कां० १५ । सू० ११ । १-२ ॥

जब पूर्ण विद्वान् परोपकारी सत्योपदेशक, गृहस्थों के घर आवें, तब गृहस्थ लोग स्वयं समीप जाकर उक्त विद्वानों को प्रणाम आदि करके उत्तम आसन पर बैठाकर पूछें कि कल के दिन कहाँ आपने निवास किया था ? हे ब्रह्मन् ! जलादि पदार्थ जो आपको अपेक्षित हों ग्रहण कीजिए, और हम लोगों को अपनें सत्योपदेश से तृप्त कीजिए ।

जो धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपातरहित, शान्त, सर्वहितकारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त करना **अतिथियज्ञ** कहाता है, उसको नित्य प्रति किया करें।

इन पंचमहायज्ञों को स्त्री और पुरुष दोनों प्रतिदिन किया करें।

॥ भोजन का मन्त्र ॥

ओं अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥

॥ यजु० ११ । ८३ ॥

॥ यज्ञोपवीत धारण करने के मन्त्र ॥

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥१॥

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥२॥ पार० गृ० २ । २ । ११ ॥

—**—

सत्सङ्ग भजन

राष्ट्रिय प्रार्थना (१)

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री: धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ यजु० २२ । २१ ॥

भजन-२

ब्रह्मन् ! स्वराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेजधारी ।
क्षत्रिय महारथी हों, अरिदल विनाशकारी ॥
होवें दुधारू गौएँ, पशु अश्व आशुवाही ।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही ॥
बलवान् सभ्य योद्धा, यजमान पुत्र होवें ।
इच्छानुसार वर्षें, पर्जन्य ताप धोवें ॥
फल-फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी ।
हो योग क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ॥

यज्ञ-प्रार्थना-३

पूजनीय प्रभो हमारे भाव उज्ज्वल कीजिये ।
छोड़ देवें छल-कपट को मानसिक बल दीजिये ॥ १ ॥
वेद की बोलें ऋचायें सत्य को धारण करें ।
हर्ष में हों मग्न सारे शोक सागर से तरें ॥ २ ॥
अश्वमेधादिक रचायें यज्ञ पर उपकार को ।
धर्म मर्यादा चलाकर लाभ दें संसार को ॥ ३ ॥
नित्य श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें ।
रोग पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें ॥ ४ ॥

भावना मिट जाये मन से पाप अत्याचार की ।
कामनाएँ पूर्ण होवें यज्ञ से नर-नारि की ॥ ५ ॥
लाभकारी हों हवन हर जीवधारी के लिए ।
वायु जल सर्वत्र हो शुभ गन्ध को धारण किये ॥ ६ ॥
स्वार्थ भाव मिटे हमारा प्रेम-पथ विस्तार हो ।
'इदन्नमम' का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो ॥ ७ ॥
प्रेमरस में तृप्त होकर वन्दना हम कर रहे ।
नाथ करुणा रूप करुणा आपकी सब पर रहे ॥ ८ ॥

भजन-४

हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिये ।
दूर करके हर बुराई को भलाई दीजिये ॥ टेक ॥
कीजिये ऐसा अनुग्रह हम पै हे परमात्मा ।
हों सभासद् इस सभा के सब के सब धर्मात्मा ॥ १ ॥
हो उजाला सब के मन में ज्ञान के प्रकाश से ।
और अन्धेरा दूर सारा हो अविद्या नाश से ॥ २ ॥
खोटे कर्मों से बचें और तेरे गुण गावें सभी ।
छुट जावें दुःख सारे सुख सदा पावें सभी ॥ ३ ॥
सारी विद्याओं को सीखें ज्ञान से भरपूर हों ।
शुभ कर्म में होवें तत्पर दुष्ट गुण सब दूर हों ॥ ४ ॥
यज्ञ हवन से हो सुगन्धित अपना भारतवर्ष देश ।
वायु जल सुखदायी होवें जायँ मिट सारे क्लेश ॥ ५ ॥
वेद के प्रचार में होवें सभी पुरुषार्थी ।
होवे आपस में प्रीति और बनें परमार्थी ॥ ६ ॥
लोभी कामी और क्रोधी कोई भी हम में न हो ।
सर्व व्यसनों से बचें और छोड़ देवें मोह को ॥ ७ ॥

अच्छी संगत में रहें और वेद मारग पर चलें ।
तेरे ही होवें उपासक और कुकर्मों से बचें ॥ ८ ॥
कीजिये हम सबका हृदय शुद्ध अपने ज्ञान से ।
मान भक्तों में बढ़ाओ अपने भक्ति-दान से ॥ ९ ॥

भजन–५

आज मिल सब गीत गाओ उस प्रभु के धन्यवाद ।
जिसका यश नित गाते हैं गन्धर्व मुनिजन धन्यवाद ॥
मन्दिरों में कन्दरों में पर्वतों के शिखर पर ।
पाते हैं आनन्द मिल गाते हैं स्वर भर धन्यवाद ॥
कूप में तालाब में सागर की गहरी धार में ।
प्रेम रस में तृप्त हो करते हैं जलचर धन्यवाद ॥
शादियों में कीर्तनों में यज्ञ और उत्सव के आदि ।
मीठे स्वर में चाहिए करें नारि नर सब धन्यवाद ॥
गान कर 'अमीचन्द' भजनानन्द ईश्वर स्तुति ।
ध्यान धर सुनते हैं श्रोता कान धर-धर धन्यवाद ॥

भजन–६

तुम्हारी कृपा से जो आनन्द पाया,
वाणी से जाये वह क्यों कर बताया ।
नहीं है यह वह रस जिसे रसना चाखे,
नहीं रूप उसका कभी दृष्टि आया ।
नहीं है वह गुण गन्ध जो घ्राण जाने,
त्वचा से न जाये वह छुआ औ छुवाया ।
संख्या में आना असम्भव है उसका,
दिशा काल में भी रहे न समाया ।
तुझ सा न दाता है, तुझ सा न दानी,
इतना बड़ा दान जिसने दिलाया ।

आत्मोन्नति में तुम्हारी दया से,
मेरी जिन्दगी ने अजब पलटा खाया ।
सत् चित आनन्द अनन्त स्वरूप,
मुझे मेरे अनुभव ने निश्चय कराया ।
गूंगे की रसना के सदृश "अमीचन्द"
कैसे बतायें कि क्या रस उड़ाया ।

भजन–७

शरण प्रभु की आओ रे, यही समय है प्यारे ॥
आओ प्रभु गुण गाओ रे, यही समय है प्यारे ॥
उदय हुआ ओ३म् नाम का भानु, आओ दर्शन पाओ रे ॥
अमृत झरना झरता है इसे पीकर अमर हो जाओ रे ॥
छल-कपट और झूठ को त्यागो, सत्य में चित्त लगाओ रे ॥
हरि की भक्ति बिन नहीं मुक्ति, दृढ़ विश्वास जमाओ रे ॥
करलो प्रभु नाम का सुमिरन, नहीं पीछे पछताओ रे ॥
छोटे बड़े सब मिल के खुशी से, गुण ईश्वर के गाओ रे ॥

भजन–८

पितु मात सहायक स्वामी सखा, तुम ही इक नाथ हमारे हो ।
जिनके कछु और आधार नहीं, तिन के तुम ही रखवारे हो ॥ १ ॥
सब भाँति सदा सुखदायक हो, दुःख दुर्गुण नाशन हारे हो ।
प्रतिपाल करो सिगरे जग को, अतिशय करुणा उर धारे हो ॥ २ ॥
भूलि हैं हम ही तुम को, तुम तो हमरी सुधि नाहि बिसारे हो ।
उपकारन को कछु अन्त नहीं, छिन ही छिन जो विस्तारे हो ॥ ३ ॥
महाराज महा महिमा तुम्हरी, समझें बिरले बुधिवारे हो ।
शुभ शान्ति निकेतन प्रेमनिधे मन मन्दिर के उजियारे हो ॥ ४ ॥
यहि जीवन के तुम जीवन हो, इन प्राणन के तुम प्यारे हो ।
तुम सों प्रभु पाय प्रताप हरि, केहि के अब और सहारे हो ॥ ५ ॥

भजन-९

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है ।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है ।।
टुक नींद से अँखियाँ खोल जरा, और अपने प्रभु से ध्यान लगा ।
यह प्रीति करन की रीति नहीं, प्रभु जागत है तू सोवत है ।।
जो कल करना है आज करले, जो आज करना है अब करले ।
जब चिड़ियों ने चुग खेत लिया, फिर पछताये क्या होवत है ।।
नादान भुगत करनी अपनी, ओ पापी पाप में चैन कहाँ ।
जब पाप की गठरी सीस धरो, फिर सीस पकड़ क्यों रोवत है ।

वैदिक आरती

भजन-१०

ओ३म् जय जगदीश पिता, प्रभु जय जगदीश पिता ।
विश्व विरंच विधाता, जगत्राता, सविता ।। ओं ।।
अनन्त अनादि अजन्मा, अविचल अविनाशी ।
सत्य सनातन स्वामी, शंकर सुख राशी ।। ओं ।।
सेवक जन सुखदायक, जननायक तुम हो ।
शुभ सुख शान्ति सुमंगल, वरदायक तुम हो ।। ओं ।।
मैं सेवक शरणागत, तुम मेरे स्वामी ।
हृदय पटल में प्रगटो, प्रभु अन्तरयामी ।। ओं ।।
काम, क्रोध, मद, मोह, कपट, छल, व्यापे नहीं मन में ।
लगन लगे मम मन की, गुण तेरे वर्णन की ।। ओं ।।
नित्य निरञ्जन निशदिन तेरो ही जाप करें ।
तव प्रताप से स्वामी, तीनों ही ताप हरें ।। ओं ।।
पतित उद्धारण तारण, शरणागत तेरी ।
भूले न भटके भ्रम में, निर्मल मति मेरी ।। ओं ।।

शुद्धि बुद्धि से मन में, तेरो ही वर्णन करें।
सब विधि छल बल तज के तेरी शरण पड़ें ॥ ओं ॥

आरती-११

ओ३म् जय जगदीश हरे, पिता जय जगदीश हरे।
भक्त जनन के संकट, क्षण में दूर करे ॥ १ ॥
जो ध्यावे फल पावे, दुःख विनशे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥ २ ॥
मात पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ जिसकी ॥ ३ ॥
तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तरयामी।
परम ब्रह्म परमेश्वर, तुम सब के स्वामी ॥ ४ ॥
तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्ता।
दीन दयालु कृपालु, कृपा करो भर्ता ॥ ५ ॥
तुम हो एक अगोचर, सब के प्राण पती।
किस विध मिलूँ दयामय, तुम को मैं कुमती ॥ ६ ॥
दीनबन्धु दुःख हर्ता, तुम रक्षक मेरे।
करुणा हस्त बढ़ाओ, शरण पड़ा तेरे ॥ ७ ॥
विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा ॥ ८ ॥

भजन-१२

ओ३म् अनेक बार बोल, प्रेम के प्रयोगी। टेक।
है यही अनादि नाद, निर्विकल्प निर्विवाद,
भूलते न पूज्य पाद, वीतराग योगी। ओ३म्०
वेद को प्रमाण मान, अर्थ योजना बखान,
गा रहे गुणी सुजान, साधु स्वर्ग भोगी। ओ३म्०

ध्यान में धरें विरक्त, भाव से भजें सुभक्त,
त्यागते अधी अशक्त, पोच पाप रोगी । ओ३म०
शंकरादि नित्य नाम, जो जपे बिसार काम,
तो बने विवेक धाम, मुक्ति क्यों न होगी । ओ३म्०

भजन–१३

धन्य २ तेरी कारीगरी करतार ।
सब निराकार और निर्विकार साकार बना दिया जग कैसे ।
जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ती, तुर्या रचा मुक्ति का मग कैसे ॥
क्या वस्तु लई जिससे देह रची फिर बना दई रग-रग कैसे ।
सब धार रहा रम सब में रहा फिर सब से रहा अलग कैसे ॥
जब अपाणिपादौ यवनो गृहीता फिर कोई पकड़ले पग कैसे ।
जब काशी काबे में पता नहीं फिर पता बता लगता कैसे ॥
बन पृथ्वी सूरज नभ तारे किस विधि रहा तू धार ।
धन्य २ तेरी कारीगरी करतार ॥ १ ॥
कर दिये सूरज से जो चमकते पदारथ ऐसी चमक निराली कहीं नहीं ।
बरसे तो भरदे जल जंगल आकाश में सागर कहीं नहीं ॥
नर तन सा चोला सींव दिया सुई धागा हाथ में कहीं नहीं ।
पत्ते-पत्ते की कतरन न्यारी तेरे हाथ कतरनी कहीं नहीं ॥
दे भोजन कीरी कुञ्जर को तेरे चढ़े भण्डारे कहीं नहीं ।
वह यथा योग्य वर्ताव करे मिले रू औ रियायत कहीं नहीं ॥
दिन रात न्याय में फर्क पड़े ना तेरी लगी कचहरी कहीं नहीं ।
अखण्ड ज्योति अपार लीला कहूँ न पायो तेरो पार ॥
धन्य २ तेरी कारीगरी करतार ॥ २ ॥
जाने किस विधि गर्भ रख कर दे क्रीड़ा बालकपन की ।
जाने जवानी आई कहाँ से कमी रही ना यौवन की ॥
फिर बुढ़ापा देकर दिखाया सबकी बनी सो एक दिन बिगड़न की ।
कोई पैसे-पैसे को मुहताज है कोई खोल रहे कोठी धन की ॥

कोई पी संग कामिन खेल करें कोई रो-रो राख करे तन की ।
कोई भटकते भटकते उमर गँवादें कोई तृप्ति कर रहें मन की ।।
वन पर्वत भूमि टीले पै टीले कहीं कहीं हरियाली वन की ।
कहीं ताल समुन्दर जल से भरे कहीं चोटी चमकती पर्वत की ।।
कहीं शरद वायु के झोंके चलें कहीं अधिक धूप गर्मी धन की ।
चातुर मास घटा घिर आवें बरस के बहा दे जलधार ।।
धन्य २ तेरी कारीगरी करतार ।। ३ ।।

जब चार वेद छः शास्त्र पुकारें सारे गुणों का शुमार नहीं ।
जब ऋषि मुनि और सन्त महन्त थके गा-गा पाया पार नहीं ।।
जो करनी चाहे कर गुजरे किसी काम में तू लाचार नहीं ।
जो करदे सो नहीं बदल सके किसी और का लेता सहारा नहीं ।।
कर भक्ति रंक गले लिपटे बिन भक्ति भूप से प्यार नहीं ।
यह बस्तीराम दरवाजे खड़ा क्यों इसकी सुनते पुकार नहीं ।।
सुख स्वरूप दरसादे अपना खोल के अखण्डों द्वार ।।
धन्य २ तेरी कारीगरी करतार ।। ४ ।।

भजन–१४

है जिसने सारे विश्व को धारण किया हुआ ।
वह है हर एक वस्तु के अन्दर रमा हुआ ।।
मिलता नहीं है इसलिए अज्ञानियों को वह ।
अज्ञान का है बुद्धि पै परदा पड़ा हुआ ।।
दुनियाँ के दुःख रूप समुद्र से वह पार ।
जगदीश से है प्रेम अति जिसका लगा हुआ ।।
सच्ची खुशी से रहते हैं वह जन सदा अलग ।
मन जिनका विषय-भोग में होवे फँसा हुआ ।।
मन तो मलीन वैसा ही पूर्ण रहा तेरा ।
गंगा में रोज जाकें नहाया तो क्या हुआ ।।
खोते हैं खेल-कूद में जो उमर रायगाँ ।
अफसोस उनकी बुद्धि को न जाने क्या हुआ ।।
अज्ञानियों से रहता है 'केवल' वह दूर-दूर ।
खुल जावें ज्ञान-चक्षु तो वह है मिला हुआ ।।

भजन-१५

तेरे दर को छोड़कर किस दर जाऊँ मैं ।
सुनता मेरी कौन है किसे सुनाऊँ मैं ॥
जब से याद भुलाई तेरी लाखों कष्ट उठाये हैं ।
क्या जानूँ इस जीवन अंदर कितने पाप कमाये हैं ॥
हूँ शरमिन्दा आपसे क्या बतलाऊँ मैं ॥ तेरे० ॥
मेरे पाप कर्म ही तुझ से प्रीति न करने देते हैं ।
कभी जो चाहूँ मिलूँ आपसे रोक मुझे ये लेते हैं ॥
कैसे स्वामी आपके दर्शन पाऊँ मैं ॥ तेरे० ॥
है तू नाथ ! वरों का दाता, तुझसे सब वर पाते हैं ।
ऋषि मुनि और योगी सारे तेरे ही गुण गाते हैं ॥
छींटा दे दो ज्ञान का होश में आऊँ मैं ॥ तेरे० ॥
जो बीती सो बीती लेकिन बाकी उमर सँभालूँ मैं ।
प्रेमपाश में बँधा आपके गीत प्रेम के गा लूँ मैं ॥

भजन-१६

अजब हैरान हूँ भगवन् ! तुम्हें क्यों कर रिझाऊँ मैं ।
कोई वस्तु नहीं ऐसी जिसे सेवा में लाऊँ मैं ॥ अजब० ॥
करें किस तौर आवाहन कि तुम मौजूद हो हर जा ।
निरादर है बुलाने को अगर घण्टी बजाऊँ मैं ॥ अजब० ॥
तुम्हीं हो मूर्ति में भी तुम्हीं व्यापक हो फूलों में ।
भला भगवान पर भगवान को क्यों कर चढ़ाऊँ मैं ॥ अजब० ॥
लगाना भोग कुछ तुमको, यह एक अपमान करना है ।
खिलाता है जो सब जग को, उसे क्यों कर खिलाऊँ मैं ॥ अजब० ॥
तुम्हारी ज्योति से रोशन हैं, सूरज चाँद और तारे ।
महा अन्धेर है कैसे तुम्हें दीपक दिखाऊँ मैं ॥ अजब० ॥
भुजायें हैं न गर्दन है, न सीना है न पेशानी ।
तुम हो निर्लेप नारायण ! कहाँ चन्दन लगाऊँ मैं ॥ अजब० ॥

भजन-१७

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में ।
है जीत तुम्हारे हाथों में, और हार तुम्हारे हाथों में ।।
मेरा निश्चय है एक यही, इक बार तुम्हें पा जाऊँ मैं ।
अर्पण करदूँ जगती भर का, सब प्यार तुम्हारे हाथों में ।।
या तो मैं जग से दूर रहूँ और जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ ।
इस पार तुम्हारे हाथों में, उस पार तुम्हारे हाथों में ।।
यदि मानुष ही मुझे जन्म मिले तो तव चरणों का पुजारी रहूँ ।
मुझ पूजक की इक-इक रग का हो तार तुम्हारे हाथों में ।।
जब-जब संसार का बन्दी बन दरबार तेरे में आऊँ मैं ।
तब-तब हो पापों का निर्णय सरकार तुम्हारे हाथों में ।।
मुझमें तुझमें है भेद यही, मैं नर हूँ तू नारायण है ।
मैं हूँ संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में ।।

भजन-१८

सुखी बसे संसार सब, दुखिया रहे न कोय ।
यह अभिलाषा हम सबकी, भगवन् ! पूरी होय ।।
विद्या, बुद्धि, तेज बल सब के भीतर होय ।
दूध पूत धन-धान्य से, वंचित रहे न कोय ।।
आपकी भक्ति प्रेम से, मन होवे भरपूर ।
राग-द्वेष से चित्त मेरा, कोसों भागे दूर ।।
मिले भरोसा नाम का, हमें सदा जगदीश ।
आशा तेरे धाम की, बनी रहे मम ईश ।।
हमें बचाओ पाप से, करके दया दयाल ।
अपना भक्त बनायकर, हमको करो निहाल ।।
दिल में दया उदारता, मन में प्रेम अपार ।
धैर्य हृदय में वीरता, सबको दो करतार ।।
नारायण तुम आप हो, पाप विमोचन हार ।
क्षमा करो अपराध सब, करदो भव से पार ।।
हाथ जोड़ विनती करूँ, सुनिये कृपानिधान ।
साधु-संगत सुख दीजिये, दया नम्रता दान ।।

❁ ओ३म् ❁

संगठन सूक्त

ओ३म् सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥१॥

हे प्रभो ! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को ।
वेद सब गाते तुम्हें हैं कीजिए धन वृष्टि को ॥

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ॥२॥

प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो ।
पूर्वजों की भाँति तुम कर्त्तव्य के मानी बनो ॥

समानो मन्त्रः समितिः समानो समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥

हों विचार समान सबके चित्त मन सब एक हों ।
ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हों ॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥४॥

हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा ।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख सम्पदा ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ ओ३म् ॥

आर्य समाज के नियम व उद्देश्य

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तिर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना, पढ़ाना, और सुनना, सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।
